1957—१९५७

1 १	TUESDAY मंगलवार	ॐ ॐ नमो ब्रह्मणे स्वस्मै सच्चिदानन्दरूपिणे ॥ अभूतैव जगज्जीवभिदा यत्र विवर्त्तते ॥ १ ॥ न हन्यते न हन्त्येष न जहाति न हीयते ॥ न हिनास्ति न हूं रूपस्तस्मादहमितीर्यते ॥ २ ॥
2 २	WEDNESDAY बुधवार	व्युत्पत्तयो भ्रान्तिजात भिदापत्ति विपत्तय: ॥ प्रातः स्मरेत कालादिकल्पनाजालमुक्त्यात्मनि शेरते ॥ ३ ॥ अस्मि भामि तथा प्रीये कस्य नानुभव: स्फुट: । सर्वत्र सर्वदा सर्वकारेष्विति निर्विच्छिन्नताम् ॥ ४ ॥ सच्चिदानन्दतैवंमापरोक्षा सम्प्रकाशते ॥ अविचार्य परिच्छिन्ना परोक्षान्या च कल्प्यते ॥ ५ ॥
3 ३	THURSDAY बृहस्पतिवार	स्वप्न और मनोराज्यमें जिस प्रकार अनियन्त्रित वासनाएं उदय होती रहती हैं उसी प्रकार जाग्रतमें भी। यदि वे विवेकसे उचित हो तो उनके अनुसार क्रिया करनी चाहिये नहीं तो स्वप्न और मनोराज्यके समान ही उनकी उपेक्षा कर देना चाहिये।
4 ४	FRIDAY शुक्रवार	जितनी इच्छाएं होती हैं और जिस कला-मनमें होती हैं उनको उसी रूपमें पूर्ण परिमाणमें भोग करना सम्भव है? बिल्कुल नहीं। तब तो भोग और कर्मकी प्रवृत्तिके लिये विवेक एवं धर्मकी आवश्यकता स्पष्ट है।
5	SATURDAY शनिवार	इच्छाएं सर्वथा न हों तो विवेक एवं धर्म-नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। सब पूर्ण हो सकें = होना सम्भव हो = किसीको प्राथमिकता न देना हो = तो चुनाव और त्यागकी आवश्यकता भी न हो। परन्तु एक मनुष्यके लिये दोनों पक्ष असम्भव हैं। इसी लिए विवेक और धर्म अपेक्षित है।

अखण्डानन्द सरस्वती

जो चाहते हैं कि पहले इच्छाओं पर नियन्त्रण हो जाय बादमें भोग और क्रिया पर नियन्त्रण करेंगे। वे मूर्ख हैं या बेईमान। जहां गिरते हैं वहीं से उठते हैं, जहाँसे गिरते हैं वहाँसे नहीं।

यदि कोई ऐसा निश्चय करता है कि जब मनमें काम, क्रोध और लोभ नहीं आवेंगे तब हम ब्रह्मचर्य, अहिंसा एवं अस्तेय का व्रत धारण करेंगे तो वह कभी सफल नहीं हो सकता। पहले नियम-संयम-व्रत, बादमें मनःशुद्धि।

व्यवहार शुद्धि साधन है अन्तःशुद्धि फल। क्रिया को रोकना कर्ताके अधीन है। इच्छा तो होकर प्रतीत है। एक क्षण पूर्व भी उसकी पता नहीं। दो इच्छा - किसी को चाहना न चाहना - एक साथ नहीं हो सकती। इस लिए, जो इच्छा विवेकानुसारिणी, धर्मानुकूल और निर्वाहके लिये आवश्यक हो उन्हें पूर्ण करना, अन्योंकी उपेक्षा कर देना चाहिये। क्रिया पर रोक होनेसे व्यर्थ इच्छाओंका उदय स्वयं रुक जायगा। ४

मनको मारना नहीं है उसे संयममें - वशमें लाना है। अर्थात उसे विवेक-चालित बनाना है। परन्तु उसकी अमूर्तता के कारण सीधे पकड़नेका कोई उपाय नहीं है। यन्त्रके नियन्त्रणसे ही विद्युतका नियन्त्रण होता है। भोग, कर्म और संग्रह को सीमित करनेसे ही कामादि विकार वशमें होते हैं। जिस मार्गसे जाना ही नहीं, उसके मीलके पत्थरोंकी जानकारी व्यर्थ है।

इन्द्रियोंको संयममें लानेके लिये नियम - स्वाध्याय, तप ईश्वर प्रणिधान आदि - चाहिये तो साथ ही मन को संयममें लानेके लिये यम - सत्य, अहिंसा आदि - आवश्यक हैं। यममें क्रोध और कामके नाशके लिये एक-एक उपाय है लोभके लिये दो। दूसरेके हक की चोरी मिटानेके लिये अस्तेय और अपने हकका भी आवश्यकतासे अधिक संग्रह रोकनेके लिये अपरिग्रह।

दोष-दुर्गुण की वृत्तिमें कोई न कोई बाह्य विषय विद्यमान रहता है जैसे लोभमें धन, क्रोधमें शत्रु। विषयके प्रति रागद्वेष न होनेसे वे वृत्तिमें नहीं आते हैं।

सम्पूर्ण सद्गुणोंका बीज और फल भी चित्तकी शान्ति है। इसी लिए सद्गुणका स्वरूप भी चित्तकी शान्ति ही है। अशान्तिका - कामक्रोधादिका आदि और अन्त क्या है? स्त्री-पुरुष रूप विषयके न रहनेपर चित्तमें क्या है - शान्ति। यही निष्कामता है। शत्रुरूप विषयसे रहित चित्त तो है। ऐसे सब। एक ही शान्ति भिन्न दुर्गुणोंको निरस्त करके विभिन्न नाम धारण करती है। सद्गुण एक है - केवल शान्ति। विषयोंके अनेक होनेके कारण तत्तद् विषयाकार वृत्तिके भेदसे दुर्गुण अनेक हैं। सद्गुण शान्ति निर्विषय होनेसे एक है।

जनवरी १९५७

सत्संग पत्रक

चित्तके साथ संघर्ष करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो स्वयं एक अशान्ति है। विवेकका आदेश मानो। शरीरको आलसी मत बनने दो। शरीर से क्रिया ठीक ठीक होती रहे तो चित्त अपने आप ही ठीक हो जाता है। विधि-निषेध क्रिया सम्बन्धी हैं। क्रियाविषयक निश्चय अपनी दृढतासे संस्कारोंके 'सत्' या 'असत्' अंशको जाग्रत् करता है।

एक ही विषयके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी दो निश्चय या दो इच्छाएं एक ही समय नहीं रह सकतीं। हेय है या उपादेय भोगूं या त्यागूं — यह तो संशय है। दृढ निश्चय होने से इच्छा भी दृढ हो जाती है। अन्तःशुद्धिका दृढ निश्चय अशुद्धिकी इच्छाओंको निवृत्त कर देता है। त्याग और भोगकी इच्छा एक साथ नहीं होती। त्यागका निश्चय और इच्छा करो। तुम्हारे भोग संग्रह और बुरे कर्मके संस्कार अपने आप दब जायेंगे।

संस्कार बहुत गहराईमें निगूढ हैं — अच्छे भी और बुरे भी। उनमें से तुम जिन्हें जगाना एवं क्रियान्वित करना चाहते हो उन्हीं के अनुरूप विचार और नये कर्म करो। फिर तो तुम्हारे अन्तःकरणमें वैसे संकल्प-इच्छाओंकी प्रधानता हो जायगी और मन अपना सेवक बन जायगा।

महत्त्व क्रियाका नहीं उद्देश्यका होता है। रास्तेमें झाडू लगानेवाला परोपकारी श्रेष्ठ हो सकता है, ध्यान उपासना करनेवाला स्वार्थी हो सकता है। तुम जो कुछ कर रहे हो वह किस लिये? ईश्वरके लिये? वह तुम्हें मिलेगा।

कर्मकी श्रेष्ठताकी कसौटी क्या है? उसकी प्रेरणाका स्रोत वासना है अथवा कर्तव्यबुद्धि? करते समय आवेश है, उत्साह है या सहजभाव है? कर्तृत्वका अभिमान है या नहीं? अन्तमें थकान, पश्चात्ताप, सुख या शान्ति क्या होता है? उसके प्रकाशनमें दुःख, सुख या और कुछ!

कोई भी व्यक्ति निरन्तर कर्मपरायण या कर्मत्यागी नहीं रह सकता। आत्मा दोनों स्थितियोंमें दोनोंसे विलक्षण है। इसलिये कर्म या नैष्कर्म्य साध्य नहीं हो सकते। व्यवहारमें एक दूसरेके पूरक हैं। शुद्धि और समाधिमें दोनों साधन हैं। आत्मज्ञानमें त्याग अन्तरंग है। स्वरूपानुभूतिमें दोनों बाधित हैं। तत्त्वतः दोनों स्वरूप हैं।

कर्मके आग्रहका कारण है अपनेमें कर्तापनकी भ्रान्ति, फलके साथ नियत सम्बन्धकी कल्पना और बाह्य पदार्थोंके निर्माणका मोह।

अखण्डानन्द (स्वामी)

कर्म अपने आश्रय द्रव्यके बिना नहीं हो सकता। कर्त्तापनेके बिना पाप पुण्य नहीं। इस लिये कर्मनिरोध केवल करणोंके नियन्त्रणसे सम्भव नहीं। जब कर्त्ता और द्रव्य दोनोंकी निवृत्ति होगी तब कर्म निःशेष मिटेंगे। समाधिकालमें द्रव्यकी प्रतीति नहीं रहती। करणके निरोधसे कर्त्तृत्वकी शान्ति हो जाती है। विवेक ख्यातिसे कर्तृत्वकी निवृत्ति होती है, द्रव्यकी नहीं। ब्रह्मकी अपरिच्छिन्नता - पूर्णताके ज्ञानसे ही द्रव्य की सत्ता बाधित होती है और तभी कर्मसे मोक्ष होता है। कर्म कभी देश काल एवं वस्तुके बिना नहीं होते। इस लिये सवभिचार एवं अपने प्रकाशक प्रत्यक्की उपलब्धिके साक्षात् साधन नहीं। अनन्त के साथ कर्मका क्या सम्बन्ध?

कर्म स्वरूपसे न पाप हैं न पुण्य। यह तो प्रकृति अथवा संस्कारका अनादि प्रवाह है। व्यक्ति एवं जातिकी स्वभावाभिव्यक्ति होती ही रहती है। उसके नियन्त्रणकी रीति- रस्म- देशों एवं जातियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। उनमेंसे किसीके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये।

धार्मिक सहिष्णुता हृदयको निर्मल करती है।

कर्म द्रव्य और कर्त्ता दोनोंमें विशेषता उत्पन्न करता है। गेहूँ साफ करें तो वह साफ होगा। यदि दूसरेको खिलानेके लिये या भगवान्‌को भोग लगानेके लिये करें तो कर्त्ता की शुद्धि होगी।

कर्म सकाम है तो तुम्हें चाहे जानेवाली वस्तुके पास पहुँचा देगा। निष्काम है तो अपने आश्रयमें शान्त होकर समाधि या ईश्वर की प्राप्तिका साधन बनेगा। ईश्वरप्राप्ति- निराकार परमात्मामें स्थिति, सायुज्य पर्यन्त।

कर्ममें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह आश्रय द्रव्य, करण और कर्त्ताको मिटा दे। कोई भी अपने स्वरूपका नाश नहीं कर सकता।

अखण्डानन्द सरस्वती

27 SUNDAY / २७ रविवार

कर्म का फल अधिकसे अधिक यही हो सकता है कि कुछ समय के लिये करणोंका निरोध हो जाय, द्रव्यों और गुणोंकी प्रतीति बंद हो जाय, कर्तृत्व शांत हो जाय, नैष्कर्म्य अवस्था की प्राप्ति हो जाय।

28 MONDAY / २८ सोमवार

यह विचार करने योग्य है कि कर्म का फल कर्म ही है कि कर्मसे विलक्षण अकर्म। स्वयं साधन और फल नहीं हो सकता। अनित्य कर्म का फल नित्य अकर्म भी नहीं हो सकता तब थोड़ी देर तक की अकर्मता ही उसका फल है।

29 TUESDAY / २९ मंगलवार

कर्म (कोई भी और कभी भी एवं किसीके भी) द्रव्य, करण और कर्ताके नितान्त निवर्तक नहीं हो सकते। इनकी त्रिपुटी उदय विलयको प्राप्त होती रहती है। इसीसे कर्मकी साधना

30 WEDNESDAY / ३० बुधवार

से संसारकी आत्यन्तिक निवृत्ति रूप मोक्ष नहीं हो सकता।

कर्म की त्रिपुटी यदि उदय और विलयको प्राप्त होती ही रही तो संसार तो बना ही रहना है।

31 THURSDAY / ३१ बृहस्पतिवार

कर्म होगा तो पाप पुण्य भी होगा। सुख दुःख भी होगा। राग द्वेष भी होगा। कर्म द्रव्यका स्वभाव है। अज्ञानी उसका अपनेमें अभिमान भी करता है। जब तक द्रव्य की स्वतः सत्ता नहीं मिटेगी

1 FRIDAY / १ शुक्रवार

तब तक अनर्थ की निवृत्ति कैसे?

जगत् का मूल द्रव्य और इसका द्रष्टा जड और चेतन — इन दोनोंके तात्त्विक स्वरूप का विचार ही एकमात्र शरण है।

2 SATURDAY / २ शनिवार

जैसे कर्म शारीरिक प्रयत्न से होते हैं, वैसे ही उपासना और योग भी मानसिक प्रयत्नोंसे होते हैं। इनको कर्ता की अपेक्षा।

अखण्डानन्द (सरस्वती)